

पुत्रगीता

[महाभारतके शान्तिपर्वमें भीष्म-युधिष्ठिर-संवादके अन्तर्गत पुत्रगीताके रूपमें एक प्राचीन आख्यान आता है, जिसमें सदा वेद-शास्त्रोंके अध्ययनमें तत्पर रहनेवाले एक ब्राह्मणको उनके मेधावी नामक तत्त्वदर्शी पुत्रद्वारा ही बहुत मार्मिक उपदेश दिये गये हैं। प्रत्येक मनुष्यका जीवन क्षणभंगुर है, मृत्यु कभी भी बिना पूर्वसूचनाके आ सकती है, अतः प्रत्येक अवस्थामें संसारकी आसक्तिसे बचकर धर्माचरण तथा सत्यव्रतका पालन करते रहना चाहिये, यही परमसाधन इस पुत्रगीतामें बताया गया है। अत्यन्त प्रभावी ढंगसे चेतावनी देनेवाली यह पुत्रगीता यहाँ सानुवाद प्रस्तुत की जा रही है—]

युधिष्ठिर उवाच

अतिक्रामति कालेऽस्मिन् सर्वभूतक्षयावहे ।
किं श्रेयः प्रतिपद्येत तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! समस्त भूतोंका संहार करनेवाला यह काल बराबर बीता जा रहा है, ऐसी अवस्थामें मनुष्य क्या करनेसे कल्याणका भागी हो सकता है? यह मुझे बताइये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितुः पुत्रेण संवादं तं निबोध युधिष्ठिर ॥ २ ॥

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें ज्ञानी पुरुष पिता और पुत्रके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। तुम उस संवादको ध्यान देकर सुनो ॥ २ ॥

द्विजातेः कस्यचित् पार्थ स्वाध्यायनिरतस्य वै ।
बभूव पुत्रो मेधावी मेधावी नाम नामतः ॥ ३ ॥

कुन्तीकुमार! प्राचीन कालमें एक ब्राह्मण थे, जो सदा वेद-

शास्त्रोंके स्वाध्यायमें तत्पर रहते थे। उनके एक पुत्र हुआ, जो गुणसे तो मेधावी था ही, नामसे भी मेधावी था ॥ ३ ॥

सोऽब्रवीत् पितरं पुत्रः स्वाध्यायकरणे रतम्।
मोक्षधर्मार्थकुशलो लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४ ॥

वह मोक्ष, धर्म और अर्थमें कुशल तथा लोकतत्त्वका अच्छा ज्ञाता था। एक दिन उस पुत्रने अपने स्वाध्यायपरायण पितासे कहा— ॥ ४ ॥

पुत्र उवाच

धीरः किंस्वित् तात कुर्यात् प्रजानन्
क्षिप्रं ह्यायुर्भ्रश्यते मानवानाम्।
पितस्तदाचक्ष्व यथार्थयोगं
ममानुपूर्व्या येन धर्मं चरेयम् ॥ ५ ॥

पुत्र बोला—पिताजी! मनुष्योंकी आयु तीव्र गतिसे बीती जा रही है। यह जानते हुए धीर पुरुषको क्या करना चाहिये? तात! आप मुझे उस यथार्थ उपायका उपदेश कीजिये, जिसके अनुसार मैं धर्मका आचरण कर सकूँ ॥ ५ ॥

पितोवाच

वेदानधीत्य ब्रह्मचर्येण पुत्र
पुत्रानिच्छेत् पावनार्थं पितृणाम्।
अग्नीनाधाय विधिवच्चेष्टयज्ञो
वनं प्रविश्याथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ६ ॥

पिताने कहा—बेटा! द्विजको चाहिये कि वह पहले ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करे; फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके पितरोंकी सद्गतिके लिये पुत्र पैदा करनेकी इच्छा करे। विधिपूर्वक त्रिविध अग्नियोंकी स्थापना करके यज्ञोंका अनुष्ठान करे। तत्पश्चात् वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। उसके बाद मौनभावसे रहते हुए संन्यासी होनेकी इच्छा करे ॥ ६ ॥

पुत्र उवाच

एवमभ्याहते लोके समन्तात् परिवारिते ।
अमोघासु पतन्तीषु किं धीर इव भाषसे ॥ ७ ॥

पुत्रने कहा—पिताजी! यह लोक जब इस प्रकारसे मृत्युद्वारा मारा जा रहा है, जरा-अवस्थाद्वारा चारों ओरसे घेर लिया गया है, दिन और रात सफलतापूर्वक आयुक्षयरूप काम करके बीत रहे हैं—ऐसी दशामें भी आप धीरकी भाँति कैसी बात कर रहे हैं? ॥ ७ ॥

पितोवाच

कथमभ्याहतो लोकः केन वा परिवारितः ।
अमोघाः काः पतन्तीह किं नु भीषयसीव माम् ॥ ८ ॥

पिताने पूछा—बेटा! तुम मुझे भयभीत-सा क्यों कर रहे हो? बताओ तो सही, यह लोक किससे मारा जा रहा है, किसने इसे घेर रखा है और यहाँ कौन-से ऐसे व्यक्ति हैं, जो सफलतापूर्वक अपना काम करके व्यतीत हो रहे हैं? ॥ ८ ॥

पुत्र उवाच

मृत्युनाभ्याहतो लोको जरया परिवारितः ।
अहोरात्राः पतन्त्येते ननु कस्मान्न बुध्यसे ॥ ९ ॥

पुत्रने कहा—पिताजी! देखिये, यह सम्पूर्ण जगत् मृत्युके द्वारा मारा जा रहा है। बुढ़ापेने इसे चारों ओरसे घेर लिया है और ये दिन-रात ही वे व्यक्ति हैं, जो सफलतापूर्वक प्राणियोंकी आयुका अपहरणस्वरूप अपना काम करके व्यतीत हो रहे हैं, इस बातको आप समझते क्यों नहीं हैं? ॥ ९ ॥

अमोघा रात्रयश्चापि नित्यमायान्ति यान्ति च ।
यदाहमेतज्जानामि न मृत्युस्तिष्ठतीति ह ।
सोऽहं कथं प्रतीक्षिष्ये जालेनापिहितश्चरन् ॥ १० ॥

ये अमोघ रात्रियाँ नित्य आती हैं और चली जाती हैं। जब मैं

इस बातको जानता हूँ कि मृत्यु क्षणभरके लिये भी रुक नहीं सकती और मैं उसके जालमें फँसकर ही विचर रहा हूँ, तब मैं थोड़ी देर भी प्रतीक्षा कैसे कर सकता हूँ? ॥ १० ॥

रात्र्यां रात्र्यां व्यतीतायामायुरल्पतरं यदा ।
गाधोदके मत्स्य इव सुखं विन्देत कस्तदा ॥ ११ ॥

जब एक-एक रात बीतनेके साथ ही आयु बहुत कम होती चली जा रही है, तब छिछले जलमें रहनेवाली मछलीके समान कौन सुख पा सकता है? ॥ ११ ॥

(यस्यां रात्र्यां व्यतीतायां न किञ्चिच्छुभमाचरेत् ।)

तदैव वन्ध्यं दिवसमिति विद्याद् विचक्षणः ।

अनवाप्तेषु कामेषु मृत्युरभ्येति मानवम् ॥ १२ ॥

जिस रातके बीतनेपर मनुष्य कोई शुभ कर्म न करे, उस दिनको विद्वान् पुरुष 'व्यर्थ ही गया' समझे। मनुष्यकी कामनाएँ पूरी भी नहीं होने पातीं कि मौत उसके पास आ पहुँचती है ॥ १२ ॥

शष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्रगतमानसम् ।

वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥ १३ ॥

जैसे घास चरते हुए भेंड़ेके पास अचानक व्याघ्री पहुँच जाती है और उसे दबोचकर चल देती है, उसी प्रकार मनुष्यका मन जब दूसरी ओर लगा होता है, उसी समय सहसा मृत्यु आ जाती है और उसे लेकर चल देती है ॥ १३ ॥

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ।

अकृतेष्वेव कार्येषु मृत्युर्वै सम्प्रकर्षति ॥ १४ ॥

इसलिये जो कल्याणकारी कार्य हो, उसे आज ही कर डालिये। आपका यह समय हाथसे निकल न जाय; क्योंकि सारे काम अधूरे ही पड़े रह जायँगे और मौत आपको खींच ले जायगी ॥ १४ ॥

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥ १५ ॥

कल किया जानेवाला काम आज ही पूरा कर लेना चाहिये।
जिसे सायंकालमें करना है, उसे प्रातःकालमें ही कर लेना चाहिये;
क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि इसका काम अभी पूरा हुआ या
नहीं ॥ १५ ॥

को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति।
(न मृत्युरामन्त्रयते हर्तुकामो जगत्प्रभुः।
अबुद्ध एवाक्रमते मीनान् मीनग्रहो यथा॥)

कौन जानता है कि किसका मृत्युकाल आज ही उपस्थित होगा ?
सम्पूर्ण जगत्पर प्रभुत्व रखनेवाली मृत्यु जब किसीको हरकर ले जाना
चाहती है तो उसे पहलेसे निमन्त्रण नहीं भेजती है। जैसे मछरे चुपकेसे
आकर मछलियोंको पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार मृत्यु भी अज्ञात रहकर
ही आक्रमण करती है ॥

युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितम्।
कृते धर्मे भवेत् कीर्तिरिह प्रेत्य च वै सुखम्॥ १६ ॥
मोहेन हि समाविष्टः पुत्रदारार्थमुद्यतः।
कृत्वा कार्यमकार्यं वा पुष्टिमेषां प्रयच्छति॥ १७ ॥

अतः युवावस्थामें ही सबको धर्मका आचरण करना चाहिये;
क्योंकि जीवन निःसन्देह अनित्य है। धर्माचरण करनेसे इस लोकमें
मनुष्यकी कीर्तिका विस्तार होता है और परलोकमें भी उसे सुख मिलता
है। जो मनुष्य मोहमें डूबा हुआ है, वही पुत्र और स्त्रीके लिये उद्योग
करने लगता है और करने तथा न करनेयोग्य काम करके इन सबका
पालन-पोषण करता है ॥ १६-१७ ॥

तं पुत्रपशुसम्पन्नं व्यासक्तमनसं नरम्।
सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव मृत्युरादाय गच्छति ॥ १८ ॥

जैसे सोये हुए मृगको बाघ उठा ले जाता है, उसी प्रकार पुत्र और पशुओंसे सम्पन्न एवं उन्हींमें मनको फँसाये रखनेवाले मनुष्यको एक दिन मृत्यु आकर उठा ले जाती है ॥ १८ ॥

सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम्।
व्याघ्रः पशुमिवादाय मृत्युरादाय गच्छति ॥ १९ ॥

जबतक मनुष्य भोगोंसे तृप्त नहीं होता, संग्रह ही करता रहता है, तभीतक ही उसे मौत आकर ले जाती है। ठीक वैसे ही, जैसे व्याघ्र किसी पशुको ले जाता है ॥ १९ ॥

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत् कृताकृतम्।
एवमीहासुखासक्तं कृतान्तः कुरुते वशे ॥ २० ॥

मनुष्य सोचता है कि यह काम पूरा हो गया, यह अभी करना है और यह अधूरा ही पड़ा है; इस प्रकार चेष्टाजनित सुखमें आसक्त हुए मानवको काल अपने वशमें कर लेता है ॥ २० ॥

कृतानां फलमप्राप्तं कर्मणां कर्मसंज्ञितम्।
क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति ॥ २१ ॥

मनुष्य अपने खेत, दूकान और घरमें ही फँसा रहता है, उसके किये हुए उन कर्मोंका फल मिलने भी नहीं पाता, उसके पहले ही उस कर्मासक्त मनुष्यको मृत्यु उठा ले जाती है ॥ २१ ॥

दुर्बलं बलवन्तं च शूरं भीरुं जडं कविम्।
अप्राप्तं सर्वकामार्थान् मृत्युरादाय गच्छति ॥ २२ ॥

कोई दुर्बल हो या बलवान्, शूरवीर हो या डरपोक तथा मूर्ख हो या विद्वान्, मृत्यु उसकी समस्त कामनाओंके पूर्ण होनेसे पहले ही उसे उठा ले जाती है ॥ २२ ॥

मृत्युर्जरा च व्याधिश्च दुःखं चानेककारणम्।
अनुषक्तं यदा देहे किं स्वस्थ इव तिष्ठसि ॥ २३ ॥

पिताजी ! जब इस शरीरमें मृत्यु, जरा, व्याधि और अनेक कारणोंसे होनेवाले दुःखोंका आक्रमण होता ही रहता है, तब आप स्वस्थ-से होकर क्यों बैठे हैं ? ॥ २३ ॥

जातमेवान्तकोऽन्ताय जरा चान्वेति देहिनम्।
अनुषक्ता द्वयेनैते भावाः स्थावरजङ्गमाः ॥ २४ ॥

देहधारी जीवके जन्म लेते ही अन्त करनेके लिये मौत और बुढ़ापा उसके पीछे लग जाते हैं। ये समस्त चराचर प्राणी इन दोनोंसे बँधे हुए हैं ॥ २४ ॥

मृत्योर्वा मुखमेतद् वै या ग्रामे वसतो रतिः।
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः ॥ २५ ॥

ग्राम या नगरमें रहकर जो स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्ति बढ़ायी जाती है, यह मृत्युका मुख ही है और जो वनका आश्रय लेता है, यह इन्द्रियरूपी गौओंको बाँधनेके लिये गोशालाके समान है, यह श्रुतिका कथन है ॥ २५ ॥

निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः।
छित्त्वैतां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ २६ ॥

ग्राममें रहनेपर वहाँके स्त्री-पुत्र आदि विषयोंमें जो आसक्ति होती है, यह जीवको बाँधनेवाली रस्सीके समान है। पुण्यात्मा पुरुष ही इसे काटकर निकल पाते हैं। पापी पुरुष इसे नहीं काट पाते हैं ॥ २६ ॥

न हिंसयति यो जन्तून् मनोवाक्कायहेतुभिः।
जीवितार्थापनयनैः प्राणिभिर्न स हिंस्यते ॥ २७ ॥

जो मनुष्य मन, वाणी और शरीररूपी साधनोंद्वारा प्राणियोंकी हिंसा नहीं करता, उसकी भी जीवन और अर्थका नाश करनेवाले हिंसक

प्राणी हिंसा नहीं करते हैं ॥ २७ ॥

न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित् प्रबाधते ।

ऋते सत्यमसत् त्याज्यं सत्ये ह्यमृतमाश्रितम् ॥ २८ ॥

सत्यके बिना कोई भी मनुष्य सामने आते हुए मृत्युकी सेनाका कभी सामना नहीं कर सकता; इसलिये असत्यको त्याग देना चाहिये; क्योंकि अमृतत्व सत्यमें ही स्थित है ॥ २८ ॥

तस्मात् सत्यव्रताचारः सत्ययोगपरायणः ।

सत्यागमः सदा दान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत् ॥ २९ ॥

अतः मनुष्यको सत्यव्रतका आचरण करना चाहिये। सत्ययोगमें तत्पर रहना और शास्त्रकी बातोंको सत्य मानकर श्रद्धापूर्वक सदा मन और इन्द्रियोंका संयम करना चाहिये। इस प्रकार सत्यके द्वारा ही मनुष्य मृत्युपर विजय पा सकता है ॥ २९ ॥

अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम् ।

मृत्युमापद्यते मोहात् सत्येनापद्यतेऽमृतम् ॥ ३० ॥

अमृत और मृत्यु दोनों इस शरीरमें ही स्थित हैं। मनुष्य मोहसे मृत्युको और सत्यसे अमृतको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

सोऽहं ह्यहिंस्रः सत्यार्थी कामक्रोधबहिष्कृतः ।

समदुःखसुखः क्षेमी मृत्युं हास्याम्यमर्त्यवत् ॥ ३१ ॥

अतः अब मैं हिंसासे दूर रहकर सत्यकी खोज करूँगा, काम और क्रोधको हृदयसे निकालकर दुःख और सुखमें समान भाव रखूँगा तथा सबके लिये कल्याणकारी बनकर देवताओंके समान मृत्युके भयसे मुक्त हो जाऊँगा ॥ ३१ ॥

शान्तिमयज्ञरतो दान्तो ब्रह्मयज्ञे स्थितो मुनिः ।

वाङ्मनःकर्मयज्ञश्च भविष्याम्युदगायने ॥ ३२ ॥

मैं निवृत्तिपरायण होकर शान्तिमय यज्ञमें तत्पर रहूँगा, मन और

इन्द्रियोंको वशमें रखकर ब्रह्मयज्ञ (वेद-शास्त्रोंके स्वाध्याय) में लग जाऊँगा और मुनिवृत्तिसे रहूँगा। उत्तरायणके मार्गसे जानेके लिये मैं जप और स्वाध्यायरूप वाग्यज्ञ, ध्यानरूप मनोयज्ञ और अग्निहोत्र एवं गुरुशुश्रूषादिरूप कर्मयज्ञका अनुष्ठान करूँगा ॥ ३२ ॥

पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति।

अन्तवद्भिरिव प्राज्ञः क्षेत्रयज्ञैः पिशाचवत् ॥ ३३ ॥

मेरे-जैसा विद्वान् पुरुष नश्वर फल देनेवाले हिंसायुक्त पशुयज्ञ और पिशाचोंके समान अपने शरीरके ही रक्त-मांसद्वारा किये जानेवाले तामस यज्ञोंका अनुष्ठान कैसे कर सकता है ? ॥ ३३ ॥

यस्य वाङ्मनसी स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा।

तपस्त्यागश्च सत्यं च स वै सर्वमवाप्नुयात् ॥ ३४ ॥

जिसकी वाणी और मन दोनों सदा भलीभाँति एकाग्र रहते हैं तथा जो त्याग, तपस्या और सत्यसे सम्पन्न होता है, वह निश्चय ही सब कुछ प्राप्त कर सकता है ॥ ३४ ॥

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।

नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥ ३५ ॥

संसारमें विद्या (ज्ञान) के समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके समान कोई तप नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है ॥ ३५ ॥

आत्मन्येवात्मना जात आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा।

आत्मन्येव भविष्यामि न मां तारयति प्रजा ॥ ३६ ॥

मैं सन्तानरहित होनेपर भी परमात्मामें ही परमात्माद्वारा उत्पन्न हुआ हूँ, परमात्मामें ही स्थित हूँ। आगे भी आत्मामें ही लीन होऊँगा। सन्तान मुझे पार नहीं उतारेगी ॥ ३६ ॥

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
 यथैकता समता सत्यता च ।
 शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं
 ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥ ३७ ॥

परमात्माके साथ एकता तथा समता, सत्यभाषण, सदाचार, ब्रह्मनिष्ठा, दण्डका परित्याग (अहिंसा), सरलता तथा सब प्रकारके सकाम कर्मोंसे उपरति—इनके समान ब्राह्मणके लिये दूसरा कोई धन नहीं है ॥ ३७ ॥

किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते
 किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि ।
 आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
 पितामहास्ते क्व गताः पिता च ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणदेव पिताजी ! जब आप एक दिन मर ही जायँगे तो आपको इस धनसे क्या लेना है अथवा भाई-बन्धुओंसे आपका क्या काम है तथा स्त्री आदिसे आपका कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होनेवाला है ? आप अपने हृदयरूपी गुफामें स्थित हुए परमात्माको खोजिये । सोचिये तो सही, आपके पिता और पितामह कहाँ चले गये ? ॥ ३८ ॥

भीष्म उवाच

पुत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा यथाकार्षीत् पिता नृप ।
 तथा त्वमपि वर्तस्व सत्यधर्मपरायणः ॥ ३९ ॥

भीष्मजी कहते हैं—नरेश्वर ! पुत्रका यह वचन सुनकर पिताने जैसे सत्य-धर्मका अनुष्ठान किया था, उसी प्रकार तुम भी सत्य-धर्ममें तत्पर रहकर यथायोग्य बर्ताव करो ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पुत्रगीता सम्पूर्णा ॥

